आप्रवासन और भारत

Migration and India

देवेश कपूर

Devesh Kapur

भारत की अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ समानांतर रूप में वैश्विक मामलों में भारत की सहभागिता भी बढ़ती रही है. यद्यपि व्यापार और वित्तीय प्रवाह की वृद्धि के रूप में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक स्पष्ट और मुखर दिखाई देती है, लेकिन लोगों का आवागमन भी बहुत महत्वपूर्ण हो गया है. ब्रिटिश शासन के दौरान 1830 के दशक से भारत से बाहर जाने वाले प्रवासी भारतीयों में औपनिवेशिक देशों में जाने वाले अपेक्षाकृत गरीब सामाजिक-आर्थिक वर्ग के अकुशल कारीगरों की तादाद सबसे ज़्यादा थी.1834 और 1937 के बीच लगभग 30 मिलियन लोग भारत से बाहर गए और उनमें से एक चौथाई या पाँचवें भाग के बराबर लोग वापस भी आ गए. स्वाधीनता के बाद बाहर जाने वाले प्रवासी भारतीय अपेक्षाकृत समृद्ध सामाजिक-आर्थिक वर्ग के थे और वे भारत के समृद्ध इलाकों से आए थे. अपवाद के रूप में मध्य-पूर्व के देशों में जाने वाले अधिकांश प्रवासी भारतीय औद्योगिक कर्मचारी थे.

खास तौर पर संयुक्त राज्य अमरीका जाने वाले प्रवासी भारतीय अन्य देशों से वहाँ आए आप्रवासियों और अन्य देशों में गए प्रवासी भारतीयों की तुलना में कहीं अधिक सुशिक्षित और उच्च शिक्षा प्राप्त थे. 1990 के दशक से भारत से ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूज़ीलैंड और सिंगापुर जाने वाले कुशल आप्रवासियों की संख्या में भी काफ़ी वृद्धि हुई .

अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासन के फलस्वरूप भारत पर जो आर्थिक प्रभाव पड़ा है, उसे आकार देने में दो मुख्य सरणियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है – वित्तीय और मानव पूँजी. 1970 के दशक के आरंभ में तेल में आए उछाल के कारण खाड़ी देशों में जो आप्रवासन हुआ, उसके कारण अनिवासी भारतीयों को भी बड़ी संख्या में आकर्षित करने के लिए प्रयास किए जाने लगे. तभी से भारत के भुगतान संतुलन में वित्तीय प्रेषण एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में उभरकर सामने आया. 1970 में यह प्रेषण लगभग नगण्य था, जो 1980 में बढ़कर 2.8 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया. 1980 के दशक में इसमें स्थिरता बनी रही और 1990 में थोड़ी-सी गिरावट आई और यह 2.4 बिलियन डॉलर हो गया. उसके बाद 1999 में इसमें तेज़ी दिखाई पड़ी और यह 11.1 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया, जो 2009 में और भी आगे बढ़कर 50 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया अर्थात् सकल विकास दर (जी.डी.पी) का लगभग 5 प्रतिशत हो गया.

पूँजीगत लेखों में प्रेषण के अंतर्प्रवाह के समानांतर ही अनिवासी भारतीयों का अंतर्र्वाह भी होता रहा. यद्यपि उन्हें आकर्षित करने की योजनाएँ तो 1970 में ही शुरू हो गई थीं, लेकिन उसके एक दशक के बाद भी जमाराशियों में मुश्किल से केवल एक बिलियन ड़ॉलर की ही वृद्धि हुई थी. 1980 के दशक के दौरान जमाराशियों में तो वृद्धि होती रही,लेकिन वित्तीय प्रेषण में कमी बनी रही. 1991 में हुए सुधारों के कारण अनिवासी भारतीयों की जमाराशियों में तेज़ी से वृद्धि हुई, जो पिछले दो दशकों में भारत की विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधि में हुई वृद्धि का लगभग 10 प्रतिशत (37 बिलियन डॉलर) था.

इस उछाल के आंशिक कारण थे, विदेशों में रहने वाले भारतीय नागरिकों की संख्या में हुई तीव्र वृद्धि, उनकी अर्जन शक्ति में तेज़ी से आई वृद्धि, सरकार की विदेशी मुद्रानीति में उदारीकरण सहित अनेक नीतिगत परिवर्तन और सोने के आयात (जिसके कारण हवाला के बजाय आधिकारिक सरणियों के माध्यम से मध्य एशिया से वित्तीय प्रेषण होने लगा) और निश्चय ही भारत के विकास की बेहतर संभावनाएँ.

पूँजीगत लेखे में चालू खातों और बैंकिंग की जमाराशियों के आए भारी अंतर्प्रवाह के विपरीत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ़.डी.आई) में अनिवासी भारतीयों से आने वाले धन प्रेषण के कारण अनिवासी भारतीयों को दंडित करने वाली सरकार की विरोधी नीतियों के कारण आंशिक रूप में अनिवासी भारतीयों का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एन.आर.आई-एफ़.डी.आई) उल्लेखनीय रूप में सीमित ही रहा.

प्राप्तकर्ता गृहस्थों पर वित्तीय प्रेषण के स्पष्ट और सकारात्मक प्रभाव के अलावा, भारत के भुगतान संतुलन पर भी उसका व्यवस्थित रूप में जबर्दस्त प्रभाव पड़ने लगा. इससे अधिक व्यापारिक घाटे को बर्दाश्त करने की गुंजाइश भी बढ़ी, जो अन्यथा संभव नहीं थी, रुपए की विनिमय दर में स्थिरता आई और इसके फलस्वरूप भारत के केंद्रीय बैंक को मौद्रिक नीति में अधिक स्वायत्तता लाने की क्षमता मिली.

ये अंतर्प्रवाह अन्य राज्यों के मुकाबले कुछ राज्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए. इसमें सबसे अच्छा उदाहरण केरल का है, जहाँ लगभग एक चौथाई राज्य में वित्तीय प्रेषण खाते हैं जिनका शुद्ध घरेलू उत्पाद पर व्यापक आर्थिक और सामाजिक परिणाम होता है. यदि केरल की अर्थव्यवस्था को देखें तो हमें यह देखकर हैरान नहीं होना चाहिए कि वित्तीय प्रेषण के अधिकांश पैसों से उपभोग में जबर्दस्त उछाल (जिसमें निर्माण के लिए कोई निवेश नहीं है) आया है और इसके परिणामस्वरूप होने वाली माँग के कारण सेवा क्षेत्र में वृद्धि हुई है और इसमें अधिकांश (जैसे निर्माण) व्यापार योग्य नहीं हैं. हाल ही में इस अंतर्प्रवाह के कारण आतिथ्य-उद्योग के

निवेश में वृद्धि हुई है और स्वास्थ्य संबंधी देखभाल और शिक्षा के क्षेत्र में निजी संस्थाओं की बाढ़-सी आ गई है.

दूसरी सरणी, जिसकी वजह से अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासन का भारत पर प्रभाव पड़ा है, वह है इसकी मानव पूँजी. कुशल भारतीय प्रवासियों के आप्रवासन के कारण पड़ने वाला प्रभाव बहुत ही स्पष्ट दिखाई देता है. इसका सकारात्मक पहलू यह है कि विदेशों में प्रवासी भारतीयों की सफलता भारत की प्रतिष्ठा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है. इसके अलावा प्रवासी भारतीयों के इस पहलू ने विभिन्न राष्ट्रीय अंतर्जालों के बीच एक ऐसा सूत्र बुन दिया है, जिसके कारण भारत को परोक्ष सूचनाएँ, व्यापारिक और कारोबारी विचार और प्रौद्योगिकी मिलने लगी है. इसके कारण "घरेलू स्रोत" को भी बढ़ावा मिलने लगा है. भारत का हीरा कटिंग उद्योग और पॉलिशिंग उद्योग इसके अच्छे उदाहरण हैं. प्रवासी भारतीयों के व्यापार में वृद्धि और निवेश पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है.

दूसरी ओर, अत्यंत कुशल भारतीयों की संख्या में भारी कमी के कारण निश्चय ही भारत पर विपरीत प्रभाव भी पड़ा है. कॉलेज या अस्पताल,सांख्यिकी प्रणाली या शोध प्रयोगशाला जैसी संस्थाएँ और संगठन चलाने के लिए प्रबंधकीय और तकनीकी क्षमता वाले व्यावसायिक लोगों की सप्लाई की कमी पर कदाचित् इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है. इसके विपरीत प्रभाव का एक बड़ा उदाहरण भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली में भी देखा जा सकता है. 1950 और 1960 के दशकों में जब आई.आई.टी और आई.आई.एम जैसी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नई संस्थाएँ स्थापित की गई थीं तो इन संस्थाओं के अनेक महत्वपूर्ण लोग राष्ट्र-निर्माण की प्रबल भावना से प्रेरित होकर विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करके भारत लौट आए थे. लेकिन 1960 के दशक के उत्तरार्ध में भारत की अधिकांश सबसे अच्छी और सबसे अधिक मेधावी प्रतिभाएँ कभी वापस न लौटने के लिए विदेश जाने लगीं. जो थोड़ी-सी प्रतिभाएँ बचीं, वे इन कुछेक संस्थाओं के उच्च स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त थीं, लेकिन इन संस्थाओं के बढ़ने पर वे उन्हें सँभाल नहीं सकती थीं. इन प्रतिष्ठित संस्थाओं से निकलने वाले स्नातकों की संख्या चार दशकों तक वस्तुतः वही बनी रही.

इस बीच, विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में प्रतिभाओं की भरपाई में कमी आने लगी,क्यों कि बहुत ही कम प्रतिभाएँ विदेशों से वापस लौटीं. अंततः जब इस शताब्दी के अंत में प्रवासी भारतीयों की वापसी बढ़ने लगी तो कुछ लोगों को ये सार्वजनिक संस्थान अपने कैरियर के व्यावहारिक विकल्प लगने लगे. भारतीय विश्वविद्यालयों (बल्कि सभी सार्वजनिक संस्थानों) के पतन का यह एक मुख्य कारण रहा. जैसे-जैसे ये संस्थाएँ मामूली होने लगीं, इनमें परिवर्तन का भी विरोध होने लगा.

भारत की उच्च शिक्षा संस्थाओं की गिरावट के अनेक जटिल कारण हैं. इसका एक बड़ा कारण यह है कि ये संस्थाएँ प्रतिभाओं की निर्यातक बन गई हैं. कोई भी प्रणाली जो प्रतिभाओं का शोषण करती है या उन्हें आहत करती है, वह लंबे समय तक आगे बढ़ने के बजाय अपने अस्तित्व का संघर्ष करने के लिए अभिशप्त रहती है. इसके महत्वपूर्ण वैचारिक प्रभाव भी हुए. . इसका सबसे सटीक उदाहरण पश्चिम बंगाल की स्थिति है, जहाँ तीन दशक के साम्यवादी शासन ने उ्च्च शिक्षा के संस्थानों को राजनीति से इतना दूषित कर दिया है कि राज्य के अच्छे से अच्छे अधिकांश शोधकर्ता सारी दुनिया में पाए जाते हैं, लेकिन पश्चिम बंगाल में उनका नामो-निशान भी नहीं बचा है.

अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासन के लाभ या लागत मुख्यतः वैश्वीकरण के विशिष्ट तंत्र में निहित नहीं होगी, बल्कि वह भारत की घरेलू नीति और राजनीति पर निर्भर होगी. प्रवासी भारतीय विदेशी राजधानियों में अपने मूल देश के लिए पैरवी करते हैं या अलगाववादी आंदोलनों के लिए धन जुटाने में मदद करते हैं. क्या "प्रतिभा पलायन" को "प्रतिभा लाभ" में परिणत नहीं किया जा सकता ? वे अपने मूल देश के कारखानों में निवेश करना चाहते हैं या अपने देशवासियों को एकतरफ़ा टिकट खरीदवा कर अपना देश छोड़ने के लिए प्रेरित करना चाहते हैं. यह सब मोटे तौर पर इस बात पर निर्भर करता है कि भारत में क्या होता है. हमें हमेशा यह याद रखना होगा कि देश के नागरिक अपना देश किसी खास वजह से ही छोड़ते हैं और जब वे देश छोड़ते हैं तो देश छोड़ने के कारण तिरोहित नहीं हो जाते. इन कारणों का निदान हम कैसे करते हैं, इसी पर मूलतः भारत में आप्रवासन के प्रभाव आकार ग्रहण करते हैं.

देवेश कपूर भारतीय उच्च अध्ययन केंद्र (कैसी) के निदेशक हैं, पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के एसोसिएट प्रोफ़ेसर हैं और समकालीन भारत के अध्ययन के लिए मदन लाल सोबती एसोसिएट प्रोफ़ेसर हैं. अगस्त 2010 में प्रोफ़ेसर कपूर की आप्रवासन पर नई पुस्तक आई थी : प्रवासी, विकास और लोकतंत्र : भारत से होने वाले अंतर्राष्ट्रीय आप्रवासन का घरेलू प्रभाव.

यह लेख सबसे पहले 24 अगस्त, 2010 को फ़ोर्ब्स इंडिया में प्रकाशित हुआ था.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>